National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(61): 271-276
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ॰ दीपक कुमार पाठक
सहा॰ आचार्य-संस्कृत विभाग,
नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत, २८४४०३

Correspondence:
डॉ॰ दीपक कुमार पाठक
सहा॰ आचार्य-संस्कृत विभाग,
नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत, २८४४०३

महाकवि अश्वघोष के रूपक 'शारीपुत्रप्रकरण' का नाट्यशास्त्रीय अध्ययन

डॉ॰ दीपक कुमार पाठक

सारांश (Abstract)

महाकवि अश्वघोष संस्कृत साहित्य के आरंभिक शास्त्रीय रचनाकारों में अग्रगण्य हैं। वे न केवल महाकाव्यकार हैं अपितु संस्कृत नाट्यपरंपरा के भी महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। उनकी नाट्यकृति 'शारीपुत्रप्रकरण' बौद्ध दर्शन के मूल तत्त्वों—अनित्यत्व, दुःख, निर्वाण, मध्यममार्ग—को नाट्यरूप में अभिव्यक्त करती है। प्रस्तुत शोधपत्र में 'शारीपुत्रप्रकरण' का परीक्षण नाट्यशास्त्र के आलोक में किया गया है।

इस अध्ययन में रूपक-लक्षण, संधि-विन्यास, रस-सिद्धांत, नायक-नायिका-भेद, वृत्ति-विधान, अभिनय-प्रकार, भाषा-शैली, अलंकारिकता, तथा बौद्ध दार्शनिक तत्त्वों का समन्वित विश्लेषण प्रस्तुत है। निष्कर्षतः यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष ने बौद्ध धर्मोपदेश को नाट्यशास्त्रीय अनुशासन में रूपायित कर भारतीय नाट्यपरंपरा को एक विशिष्ट आध्यात्मिक आयाम प्रदान किया।

मुख्य शब्द (Keywords) : अश्वघोष, शारीपुत्रप्रकरण, नाट्यशास्त्र, प्रकरण-रूपक, शान्त रस, बौद्ध नाटक, संस्कृत रंगपरंपरा

प्रस्तावना

भारतीय नाट्यकला की परंपरा अत्यंत प्राचीन एवं शास्त्रीय रूप से सुगठित है। भरतमुनि द्वारा प्रणीत नाट्यशास्त्र में नाटक को **"पंचमवेद"**[1] कहा गया है— **"नाट्यं भिन्नरुचिर्जनस्य सर्वस्य मनोरञ्जनम्।"**[2] अर्थात नाटक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थों का उपदेशक माध्यम है।

संस्कृत नाटकों में पौराणिक, ऐतिहासिक और राजकीय विषयों की प्रधानता रही है; परन्तु बौद्ध साहित्य में संस्कृत रूपक अपेक्षाकृत दुर्लभ हैं। इस दृष्टि से 'शारीपुत्रप्रकरण' अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह कृति बुद्ध के प्रधान शिष्य शारिपुत्र के आध्यात्मिक परिवर्तन को नाटकीय संरचना में प्रस्तुत करती है।

महाकवि अश्वघोष का जीवन एवं साहित्यिक अवदान

अश्वघोष का काल सामान्यतः प्रथम-द्वितीय शती ईस्वी माना जाता है। उन्हें कुषाण सम्राट कनिष्क का आश्रित कहा जाता है। वे मूलतः साकेत के निवासी तथा ब्राह्मण वर्ण से थे, परन्तु तत्कालीन समय में सनातन परम्परा में व्याप्त कुरीतियों के कारण वे बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर उसमें दीक्षित हुए।

उनकी तीन प्रमुख रचनाएं उपलब्ध हैं—

- बुद्धचरित
- सौन्दरानन्द
- शारीपुत्रप्रकरण

'बुद्धचरित' में तथागत बुद्ध के जीवन का महाकाव्यात्मक चित्रण है, जबकि 'सौन्दरानन्द' में वैराग्य की भावभूमि है। 'शारीपुत्रप्रकरण' इन दोनों के मध्य नाटकीय सेतु का कार्य करता है।

शारीपुत्रप्रकरण: कृति-परिचय एवं कथानक

'शारीपुत्रप्रकरण' शीर्षक का अर्थ नाट्यशास्त्रीय और ऐतिहासिक—दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। 'शारीपुत्र' (शारिपुत्र) बुद्ध के प्रधान शिष्य थे, जिनका जीवन वैचारिक जिज्ञासा, तर्कशीलता और अंततः आध्यात्मिक रूपांतरण का प्रतीक है। महाकवि अश्वघोष ने इसी चरित्र को नाटक का केंद्र बनाकर उसकी आध्यात्मिक यात्रा को रूपायित किया है। 'प्रकरण' शब्द का तात्पर्य नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट उस रूपककल्पित होता है-भेद से है जिसमें कथानक कवि-, नायक राजवंशी न होकर सामान्य कुलोत्पन्न होता है, और कथा सामाजिक अथवा दार्शनिक प्रसंगों पर आधारित होती है—"प्रकरणं नाम कल्पितकथानकं साधारणनायकम्"।[3] इस प्रकार 'शारीपुत्रप्रकरण' शीर्षक स्वयं स्पष्ट करता है कि यह नाटक बुद्ध शिष्य शारिपुत्र के जीवन परिवर्तन को केंद्र में रखकर रचित एक-प्रकरणरूपक है-, जिसमें नाट्यशास्त्रीय संरचना और बौद्ध दार्शनिकता का समन्वित प्रस्तुतीकरण किया गया है।

शारीपुत्रप्रकरण की कथावस्तु

नाटक का मूल कथानक शारिपुत्र के वैचारिक संशय और बुद्ध के उपदेश से उनके रूपांतरण पर आधारित है।

एक प्रसंग में शिष्य अश्वजीत का कथन— "ये धर्मा हेतुप्रभवा, तेषां हेतुं तथागतः आह।" यह श्लोक बौद्ध धर्म के कारणवाद (प्रतीत्यसमुत्पाद) का सार है।

शारिपुत्र इस सिद्धांत से प्रभावित होकर बुद्ध से मिलते हैं। संवादों के माध्यम से चार आर्यसत्य प्रतिपादित होते हैं—

1. दुःख
2. दुःखसमुदय
3. दुःखनिरोध
4. मार्ग

अंततः शारिपुत्र बुद्ध वचन से संतुष्ट होते हैं और बौद्ध दर्शन में दीक्षित होकर निर्वाणमार्ग के पथिक बनते हैं।

रूपक की संकल्पना और नाट्यशास्त्रीय आधार

रूपकलक्षण-

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में दस रूपकों का उल्लेख किया है—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार आदि। प्रकरण के विषय में कहा गया— "प्रकरणं नाम कल्पितकथानकं साधारणनायकम्।" अर्थात प्रकरण में कथानक लौकिक होता है तथा नायक सामान्य कुल का होता है।

शारीपुत्रप्रकरण प्रकरण की कोटि में आता है क्योंकि इसमें ऐतिहासिक-धार्मिक पात्रों का लौकिक प्रसंग नाट्यरूप में प्रस्तुत है अतः 'शारीपुत्रप्रकरण' इन लक्षणों को पूर्ण करता है—

- शारीपुत्रप्रकरण का कथानक कवि-कल्पित
- शारीपुत्रप्रकरण का नायक ब्राह्मण/साधक
- शारीपुत्रप्रकरण का विषय धार्मिक-सामाजिक

कथानक संरचना एवं पञ्चसंधि-विन्यास

संस्कृत नाट्यपरंपरा में कथानक-विकास की जो वैज्ञानिक संरचना उपलब्ध होती है, उसका सर्वप्रथम व्यवस्थित प्रतिपादन नाट्यशास्त्र में मिलता है। भरतमुनि ने स्पष्ट कहा है कि नाटक का विकास संधियों के माध्यम से क्रमिक रूप से होता है—**"बीजस्य आरोपणं मुखम्, विकासः प्रतिमुखम्, विस्तारो गर्भः, समाधानाभिमुखो विमर्शः, फलागमो निर्वहणम्"**।[4] इसी प्रकार बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य—इन पाँच अर्थप्रकृतियों के माध्यम से कथा की संरचना सजीव बनती है। 'शारीपुत्रप्रकरण' में महाकवि अश्वघोष ने शारिपुत्र की आध्यात्मिक जिज्ञासा को बीज रूप में स्थापित किया है। नाटक के प्रारम्भ में शारिपुत्र का दार्शनिक असंतोष—"अनित्यं खलु जगत्, दुःखमयं च जीवनम्"—जैसे भावों के माध्यम से व्यक्त होता है, जो मुखसंधि का बीज है। तत्पश्चात् अश्वजीत के उपदेश—"ये धर्मा हेतुप्रभवा तेषां हेतुं तथागतः आह"[5]—के श्रवण से प्रतिमुखसंधि में बीज का विकास होता है। यहाँ बिन्दु रूप में जिज्ञासा तीव्र होकर बुद्ध-दर्शन की आकांक्षा में परिणत होती है। इस प्रकार संधि-विन्यास केवल घटनाक्रम नहीं, अपितु शारिपुत्र के अंतर्मन में चल रहे दार्शनिक द्वंद्व का क्रमिक नाट्यरूप है।

गर्भसंधि में बुद्ध और शारिपुत्र के मध्य दार्शनिक संवाद कथा का उत्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। चार आर्यसत्यों का प्रतिपादन—**"दुःखं दुःखसमुदयो दुःखनिरोधो मार्गश्च"**[6] —न केवल उपदेश है, बल्कि नाटकीय तनाव का केंद्र भी है। यहाँ पताका और प्रकरी रूप में सहायक प्रसंग—संसार की अनित्यता, कर्मबंध, निर्वाणमार्ग—मुख्य बीज को पुष्ट करते हैं। विमर्शसंधि में शारिपुत्र का संशय निवृत्त होकर आत्मानुभूति की दिशा में अग्रसर होता है; यही वह निर्णायक क्षण है जहाँ स्थायीभाव 'निर्वेद' शान्ति की ओर उन्मुख होता है। अंततः निर्वहणसंधि में दीक्षा-प्रसंग के साथ कथा का कार्य पूर्ण होता है—जिज्ञासा से ज्ञान तक की यात्रा संपन्न होती है। इस प्रकार 'शारीपुत्रप्रकरण' का पञ्चसंधि-विन्यास भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित नाट्यशास्त्रीय अनुशासन का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ संरचना और आध्यात्मिक उत्कर्ष परस्पर अविभाज्य रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

रस-सिद्धांत और शान्त रस की प्रतिष्ठा

रस-सिद्धांत की आधारभूमि नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित सूत्र **"विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः**[7] है। भरतमुनि के अनुसार स्थायीभाव जब विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभावों के

संयोग से परिपक्व होता है, तब रस की अनुभूति होती है। 'शारीपुत्रप्रकरण' में शान्त रस का स्थायीभाव *निर्वेद* है, जो संसार की अनित्यता और दुःखबोध से उत्पन्न होता है। नाटक के आरम्भ में शारिपुत्र की जिज्ञासा और वैचारिक असंतोष *आलम्बन-विभाव* का कार्य करते हैं, जबकि संसार-दुःख का प्रत्यक्ष चित्रण *उद्दीपन-विभाव* के रूप में कार्य करता है। उदाहरणतः अनित्यत्व की भावना को व्यक्त करते हुए जीवन को क्षणभंगुर बताया गया है—"**अनित्यमसुखं लोकम्**"[8] जैसे कथन संसार के प्रति वैराग्य का वातावरण निर्मित करते हैं। शारिपुत्र के अंतर्मन में उत्पन्न विषाद, चिन्तन, और समाधान-प्राप्ति की उत्कंठा *व्यभिचारीभाव* के रूप में क्रमशः प्रकट होते हैं; इनके परिपाक से वैराग्य स्थायीभाव दृढ़ होकर शान्त रस में परिणत होता है। इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय परिभाषा के अनुरूप यहाँ विभाव (संसार-दुःख), अनुभाव (विचारमग्नता, संयत वाणी, ध्यानमुद्रा) तथा संचारीभाव (विषाद, जिज्ञासा, निर्वेद) मिलकर शान्त रस की निष्पत्ति करते हैं।

'शारीपुत्रप्रकरण' में करुण रस भी महत्त्वपूर्ण सहचर के रूप में उपस्थित है, जो शान्त रस की प्रतिष्ठा को और गहन बनाता है। संसार की पीड़ाओं, जन्म-मरण-चक्र और मोहजन्य क्लेश का वर्णन करुण रस के *आलम्बन-विभाव* प्रस्तुत करता है। बुद्धोपदेश के प्रसंग में कारणवाद का प्रसिद्ध सूत्र—"**ये धर्मा हेतुप्रभवा तेषां हेतुं तथागतः आह**"—जीवन के दुःखमूल का दार्शनिक उद्घाटन करता है और करुणानुभूति को वैचारिक आधार प्रदान करता है। यहाँ शारिपुत्र की करुणावस्था केवल भावुकता नहीं, बल्कि बौद्धिक आत्मान्वेषण का चरण है; यही करुण से शान्त की ओर गमन का नाटकीय सेतु बनता है। करुण रस के व्यभिचारीभाव—शोक, दैन्य, विषाद—क्रमशः निर्वेद में परिणत होकर शान्त रस को पुष्ट करते हैं। इस प्रकार नाटक में करुण और शान्त का पारस्परिक संबंध नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुकूल है, जहाँ करुण रस शान्त की पूर्वपीठिका बनकर अंतिम आध्यात्मिक समाधान—निर्वाण—की ओर ले जाता है।

पात्र-रचना और नायक-स्वरूप

नाट्यशास्त्र में नायक-स्वरूप का निरूपण करते हुए भरतमुनि ने चार प्रकारों—धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत—का उल्लेख किया है।[9] धीरोदात्त नायक के विषय में परवर्ती आचार्यों ने भी कहा है—"गम्भीरः क्षमावान् स्थिरव्रतः सत्यपरायणः"[10] [i]इत्यादि। 'शारीपुत्रप्रकरण' में शारिपुत्र का चरित्र इसी धीरोदात्त आदर्श के अनुरूप प्रकट होता है। प्रारंभ में तो वे एक जिज्ञासु ब्राह्मण के रूप में चित्रित होते हैं, जिनके अंतःकरण में तत्त्वज्ञान की प्रखर पिपासा है। उनके संवादों में उतावलापन या आत्माभिमान नहीं, अपितु विवेकपूर्ण परीक्षण और सत्य-स्वीकार की बौद्धिक निष्ठा दिखाई देती है। अश्वजीत द्वारा प्रतिपादित सूत्र—"ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतः आह"— सुनकर शारिपुत्र का चित्त चंचल नहीं होता, अपितु विचारोन्मुख बनता है; वे तर्कपूर्वक बुद्ध से प्रत्यक्ष मिलकर समाधान चाहते हैं। यह क्रमिक बौद्धिक अन्वेषण उनके दृढ़व्रत, आत्मसंयम और धर्मानुराग को प्रकट करता है। आंतरिक द्वंद्व, संशय और फिर निर्वेद की ओर उन्मुखता—ये सब उनके चरित्र-विकास की स्वाभाविक अवस्थाएँ हैं, जो नाट्यशास्त्रीय नायक-लक्षणों के अनुरूप हैं। इस प्रकार शारिपुत्र न केवल कथानक के प्रेरक पात्र हैं, बल्कि धीरोदात्त आदर्श के जीवंत प्रतिरूप भी हैं, जिनका आध्यात्मिक उत्कर्ष नाटकीय प्रक्रिया के माध्यम से अभिव्यक्त होता है।

दूसरी ओर, 'शारीपुत्रप्रकरण' में बुद्ध का चरित्र गुरु-नायक के रूप में प्रतिष्ठित है, जो प्रत्यक्षतः प्रधान नायक न होकर भी नाटकीय परिवर्तन के मूल कारण—आलम्बन विभाव—का कार्य करता है। अश्वघोष ने बुद्ध को उपदेशात्मक किंतु करुणामय, संयत एवं तर्कसंगत संवादकर्ता के रूप में चित्रित किया है। नाट्यशास्त्रीय रस-सिद्धांत के अनुसार विभाव, अनुभाव और संचारीभाव की संगति से रस-निष्पत्ति होती है; यहाँ बुद्ध का व्यक्तित्व शान्त रस के आलम्बन विभाव के रूप में उपस्थित है। उनके वचनों में मध्यममार्ग का संतुलन, करुणा की कोमलता और तर्क की स्पष्टता दिखाई देती है—वे न तो दार्शनिक अहंकार प्रदर्शित करते हैं और न ही दमनकारी उपदेश देते हैं, बल्कि शिष्य की जिज्ञासा का सम्मान करते हुए क्रमशः समाधान प्रदान करते हैं। परिणामतः शारिपुत्र के अंतःकरण में जो परिवर्तन घटित होता है, वह बाह्य उपदेश का यांत्रिक प्रभाव नहीं, बल्कि आत्मानुभूति की जागृति है। इस प्रकार नायक (शारिपुत्र) और गुरु (बुद्ध) का संबंध नाट्यशास्त्रीय संरचना में परस्पर पूरक रूप से प्रतिष्ठित है—एक जिज्ञासु साधक के रूप में और दूसरा आलम्बन-कारण के रूप में। महाकवि अश्वघोष ने इन दोनों पात्रों को आध्यात्मिक आदर्श के रूप में संतुलित ढंग से प्रस्तुत कर नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों और बौद्ध दर्शन के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रदान किया है।

वृत्ति और प्रवृत्ति का विश्लेषण

नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट वृत्तिचतुष्टय-—"**भारती सात्वती चैव आरभटी कैशिकी तथा**"[11]—के प्रकाश में 'शारीपुत्रप्रकरण' का अनुशीलन करने पर स्पष्ट होता है कि इसमें **भारती वृत्ति** की प्रधानता संवादबहुलता - वितर्क के कारण स्वाभाविक रूप से सिद्ध होती है-और दार्शनिक तर्क, क्योंकि भरतमुनि के अनुसार "**वाग्व्यापारप्रधानत्वाद् भारती**"[12]

अर्थात् जहाँ वाचिकाभिनय और शास्त्रार्थात्मक प्रवचन की अधिकता हो, वहाँ भारती वृत्ति प्रभावी होती है। साथ ही शारिपुत्र के अंतर्मुखी वैराग्य, निर्वेद और समाधिभाव के कारण- **सात्वती वृत्ति** भी प्रकट होती है, जिसका लक्षण है—"**उदात्तसत्त्वसम्पन्ना सात्वती नाम कीर्तिता**"[13], अर्थात् उदात्तता, धैर्य और आत्मसंयम से युक्त भावप्रदर्शन। प्रवृत्तिविचार की दृष्टि से नाटक में मध्यदेशीय - सांस्कृतिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है; नाट्यशास्त्र में कहा गया है—"**देशभाषाचारवेषानुसारिणी प्रवृत्तिः**"[14], अर्थात् देशविशेष की - भाषा, आचार और वेश के अनुसार प्रवृत्ति निर्धारित होती है। 'शारीपुत्रप्रकरण' में प्रयुक्त संस्कृतप्राकृत संतुलन-, ब्राह्मणबौद्ध - यमुना क्षेत्र की दार्शनिक परंपरा -बौद्धिक परिवेश तथा गंगा मध्यदेशीय प्रवृत्ति का संकेतदेती है, जिससे स्पष्ट होता है कि महाकवि अश्वघोष ने वृत्ति और प्रवृत्ति—दोनों का शास्त्रीय समन्वय करते हुए नाटक को सांस्कृतिक और दार्शनिक प्रामाणिकता प्रदान की है।

अभिनय-तत्त्व

नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने अभिनय को चार रूप में निरूपित किया है—"**आङ्गिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्त्विकस्तथा**"[15]—अर्थात् शरीर, वाणी, वेशभूषा तथा अंतःकरण से व्यक्त भावों का समन्वय - ही समग्र अभिनय है।'शारीपुत्रप्रकरण' में इन चारों अभिनयतत्त्वों - मुद्रा-की सम्यक् संभावना विद्यमान है। आङ्गिक अभिनय ध्यान, संयत गमन, करवि-न्यास और नेत्र-न्यास में व्यक्त होता है, विशेषतः उन प्रसंगों में जहाँ शारीपुत्र समाधि या मनन की अवस्था में चित्रित हैं; नाट्यशास्त्र में कहा गया है—"**अङ्गोपाङ्गप्रयोगोऽयं आङ्गिकाभिनयः स्मृतः**।"[16] वाचिक अभिनय की दृष्टि से यह रूपक अत्यंत समृद्ध है, क्योंकि बुद्ध और शारीपुत्र के मध्य दार्शनिक संवाद, कारणवाद और अनित्यत्व के तर्कपूर्ण प्रतिपादन वाणी की गंभीरता, उच्चारणनियमन की माँग करते हैं-शुद्धि तथा स्वर-; भरतमुनि के शब्दों में—"**वाक्प्रयोगो यथायोग्यं वाचिकाभिनयः स्मृतः**।"[17] आहार्य अभिनय में संन्यासीवेश-, काषायवस्त्र-, मृदु आभूषण-विरहित रूप तथा मठसंयोजना को आध्यात्मिक -वातावरण की सादगी दृश्य-गरिमा प्रदान करती है। किंतु इस रूपक की आत्मा सात्त्विक अभिनय में निहित है—नाट्यशास्त्र के अनुसार "**स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभेदोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इति सात्त्विकाः स्मृताः**॥"[18] शारीपुत्र के वैराग्य, निर्वेद, अश्रुसिक्त आत्मानुभूति तथा बुद्ध के - प्रसूत उपदेश में ये सात्त्विक भाव स्वाभाविक रूप से -करुणा अभिव्यक्त होते हैं। ध्यान, वैराग्य और दीक्षा के प्रसंगों में आन्तरिक चित्तपरिवर्तन ही नाटकीय प्रभाव का मूलाधार है-; अतः महाकवि अश्वघोष ने इस रूपक में वाचिक और सात्त्विक अभिनय की विशेष संभावनाएँ निर्मित कर नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों को आध्यात्मिक अनुभव के साथ सफलतापूर्वक संयोजित किया है।

बौद्ध दर्शन और नाट्यशास्त्र का समन्वय

'शारीपुत्रप्रकरण' में महाकवि अश्वघोष ने बौद्ध धर्म के मूल तत्त्वों—प्रतीत्यसमुत्पाद, अनित्यत्व, दुःख और निर्वाण—को नाट्यशास्त्रीय संरचना में रूपायित कर धर्म और कला का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत किया है। नाट्यशास्त्र में नाटक का उद्देश्य स्पष्ट किया गया है—"**लोकवृत्तानुकरणं नाट्यम्**" तथा "**धर्म्यमर्थ्यम् यशस्यम् आयुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्**"[19]। अर्थात् नाटक केवल मनोरंजन नहीं, अपितु धर्म, अर्थ और बुद्धि-विकास का साधन है। अश्वघोष इसी सिद्धांत को मूर्त करते हैं। शारिपुत्र के जिज्ञासु मन से आरम्भ होकर बुद्धोपदेश तक की यात्रा नाट्य-रचना के अनुशासन में बँधी है, जहाँ दार्शनिक उपदेश संवाद-रूप में प्रस्तुत होता है। उदाहरणार्थ, बौद्ध कारणवाद का सूत्र—"ये धर्मा हेतुप्रभवा, तेषां हेतुं तथागतः आह"—न केवल दार्शनिक प्रतिपादन है, बल्कि कथानक-विकास का प्रेरक बिन्दु भी है। इस प्रकार विभाव (जिज्ञासा), अनुभाव (संवाद, तर्क), संचारीभाव (संशय, विस्मय, निर्वेद) और स्थायीभाव (वैराग्य) के माध्यम से शान्त रस की निष्पत्ति होती है, जो नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुरूप है।

इसी प्रकार 'शारीपुत्रप्रकरण' बौद्ध विचारधारा का रंगमंचीय रूपांतरण है, जिसमें आध्यात्मिक उत्कर्ष को नाटकीय संरचना का अंग बनाया गया है। नाट्यशास्त्र में कहा गया है—"**नाट्यं भिन्नरुचिर्जनस्य सर्वस्य मनोरञ्जनम्**"[20] अर्थात् नाटक विविध रुचियों वाले जनसमुदाय को शिक्षित और आनन्दित करने का माध्यम है। अश्वघोष इस आदर्श को अपनाते हुए बौद्ध धर्मोपदेश को उपदेशात्मक ग्रंथ के रूप में नहीं, बल्कि नाटकीय अनुभव के रूप में प्रस्तुत करते हैं। शारिपुत्र का संशय से समाधि तक का रूपांतरण पञ्चसंधि-विन्यास के अनुसार विकसित होता है, जिससे धर्मोपदेश कथानक में स्वाभाविक रूप से समाहित हो जाता है। अनित्यत्व के प्रसंग में व्यक्त भाव—"**अनित्यमसुखं लोकम्**"[21] —करुण और शान्त रस के संयोग से दर्शक में वैराग्य का संस्कार उत्पन्न करता है। इस प्रकार अश्वघोष ने नाट्यशास्त्र के 'लोकानुग्रह' और 'धर्मोपदेश' संबंधी सिद्धांतों को आधार बनाकर बौद्ध दर्शन को जनसामान्य तक पहुँचाया। 'शारीपुत्रप्रकरण' इसलिए भारतीय साहित्य में धर्म और कला के समन्वय का एक उत्कृष्ट, शास्त्रीय और रंगमंचीय उदाहरण सिद्ध होता है।

तुलनात्मक अध्ययन

महाकवि अश्वघोष ने बौद्ध दर्शन को केवल दार्शनिक ग्रंथों तक सीमित न रखकर उसे नाट्यरूप में अभिव्यक्त किया, जो भारतीय साहित्य में धर्म और कला के सशक्त समन्वय का उदाहरण है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि नाटक के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं— **"धर्म्यं यशस्यं आयुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम् । लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति॥"**[22]। यहाँ नाटक को **'लोकोपदेशजननम्'**[23] अर्थात् जनसामान्य को उपदेश देने वाला माध्यम कहा गया है। अश्वघोष ने इसी सिद्धांत को मूर्त रूप देते हुए 'शारीपुत्रप्रकरण' में बौद्ध धर्म के मूल तत्त्व—दुःख, अनित्यत्व, प्रतीत्यसमुत्पाद और निर्वाण—को संवादात्मक संरचना में प्रस्तुत किया। उदाहरणार्थ, अश्वजीत द्वारा उच्चरित बौद्ध सूत्र— **"ये धर्मा हेतुप्रभवा तेषां हेतुं तथागतः आह, तेषां च यो निरोधः एवंवादी महाश्रमणः"**[24]—नाटक में दार्शनिक बीज के रूप में आरोपित होता है। यह सूत्र कारण-कार्य सिद्धांत का सार प्रस्तुत करता है और नायक के अंतर्मन में वैचारिक जिज्ञासा जागृत करता है। इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय "बीज" और बौद्ध "प्रतीत्यसमुत्पाद" का सिद्धांत परस्पर समन्वित रूप में कथा-विकास का आधार बनता है।

'शारीपुत्रप्रकरण' में बौद्ध दर्शन का रंगमंचीय रूपांतरण शान्त रस की निष्पत्ति के माध्यम से पूर्णता प्राप्त करता है। नाट्यशास्त्र में रस को नाटक का प्राण कहा गया है— **"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"**[25] अश्वघोष ने शारिपुत्र के वैराग्य, संशय और अंततः आत्मबोध की प्रक्रिया को विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के क्रमिक संयोजन से विकसित किया है। संसार की क्षणभंगुरता को व्यक्त करते हुए नाटक में जीवन की अनित्यता का भाव— **"अनित्यमसुखं लोकम्"**[26] —प्रतिपादित होता है, जो शान्त रस की स्थायीभाव 'निर्वेद' की ओर ले जाता है। यहाँ धर्मोपदेश उपदेशात्मक न होकर नाटकीय अनुभव बन जाता है; बुद्ध और शारिपुत्र का संवाद केवल दार्शनिक विमर्श नहीं, बल्कि आंतरिक रूपांतरण की रंगमंचीय प्रक्रिया है। इस प्रकार अश्वघोष ने नाट्यशास्त्रीय संरचना—रस, संधि, बीज और अभिनय—के माध्यम से बौद्ध आध्यात्मिकता को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। 'शारीपुत्रप्रकरण' वास्तव में धर्म और नाट्य के त्रिवेणी-संगम का उदाहरण है, जहाँ दर्शन कला में रूपांतरित होकर जनमानस के हृदय तक पहुँचता है।

समकालीन प्रासंगिकता

आधुनिक युग में जब मानव जीवन भौतिक उपभोग, मानसिक तनाव और मूल्य-संकट से ग्रस्त है, तब 'शारीपुत्रप्रकरण' जैसे रूपक की प्रासंगिकता अत्यंत बढ़ जाती है। नाट्यशास्त्र में नाटक के प्रयोजन का उल्लेख करते हुए कहा गया है— **"लोकवृत्तानुकरणं नाट्यम्।"**[27] अर्थात् नाटक लोकजीवन का अनुकरण कर उसे शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक रूप में प्रस्तुत करता है। आगे यह भी कहा गया— **"धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपदेशजननं नाट्यम्।"**[28] अर्थात नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि चतुर्विध पुरुषार्थों का उपदेशक है। इसी दृष्टि से 'शारीपुत्रप्रकरण' में शारिपुत्र की जिज्ञासा, वैराग्य और आत्मचिंतन की प्रक्रिया आधुनिक मनुष्य के अंतर्द्वंद्व का प्रतीक बन जाती है। बुद्ध के उपदेश—"ये धर्मा हेतुप्रभवा..."—कारण-कार्य के नैतिक सिद्धांत को स्पष्ट करते हैं, जो आज के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में उत्तरदायित्व, करुणा और नैतिक आचरण की प्रेरणा देता है। वर्तमान समय में जब व्यक्तित्व विखंडन और मूल्यहीनता का संकट विद्यमान है, तब शारिपुत्र की आत्मान्वेषण-यात्रा आत्मसंयम और शान्ति की दिशा में मार्गदर्शक बनती है।

महाकवि अश्वघोष कृत 'शारीपुत्रप्रकरण' की रंगमंचीय पुनर्प्रस्तुति भी समकालीन सांस्कृतिक पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। नाट्यशास्त्र में शान्ति और समन्वय को नाटक का अंतिम उद्देश्य माना गया है— **"नाट्यं भिन्नरुचिर्जनस्य सर्वस्य मनोरञ्जनम्।"**[29] यह सार्वजनीनता आज के बहुलतावादी समाज में विशेष सार्थक है। 'शारीपुत्रप्रकरण' का केंद्रीय भाव शान्त रस है, जिसका स्थायीभाव 'निर्वेद' है—अर्थात् भोग-विलास से निवृत्ति और आत्मज्ञान की ओर प्रवृत्ति। आधुनिक रंगमंच पर इसकी प्रस्तुति केवल ऐतिहासिक पुनरावृत्ति नहीं होगी, बल्कि बौद्ध सांस्कृतिक धरोहर के पुनर्जीवन का माध्यम बनेगी। करुणा (करुणा-भाव), मैत्री और मध्यममार्ग जैसे सिद्धांत आज के वैश्विक समाज में सहअस्तित्व और शांति की स्थापना के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं। इस प्रकार 'शारीपुत्रप्रकरण' न केवल एक शास्त्रीय रूपक है, बल्कि समकालीन मानवता के लिए नैतिक पुनर्संरचना का सशक्त सांस्कृतिक साधन भी है।

निष्कर्ष

'शारीपुत्रप्रकरण' नाट्यशास्त्रीय मानदंडों की दृष्टि से एक सुविन्यस्त और संतुलित रूपक सिद्ध होता है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने नाटक के उद्देश्य को "लोकवृत्तानुकरण" तथा "धर्मार्थकाममोक्षोपदेशजननम्" कहा है— *"नाट्यं भिन्नरुचिर्जनस्य सर्वस्य मनोरञ्जनम्"*। इसी सिद्धांत के अनुरूप 'शारीपुत्रप्रकरण' में महाकवि अश्वघोष ने शारिपुत्र के आंतरिक आध्यात्मिक संघर्ष को नाटकीय अनुशासन में प्रस्तुत किया है। प्रकरण-रूपक के लक्षण— **"प्रकरणं नाम कल्पितकथानकं साधारणनायकम्"**[30] —इस कृति में पूर्णतया परिलक्षित होते हैं,

क्योंकि यहाँ नायक राजवंशी नहीं, अपितु तत्त्वान्वेषी साधक है, और कथानक का विकास उसके वैचारिक रूपांतरण पर आधारित है। पञ्चसंधि-विन्यास—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण—का क्रम शारिपुत्र की जिज्ञासा से दीक्षा तक क्रमिक रूप से विकसित होता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि अश्वघोष ने नाट्यशास्त्रीय संरचना को आत्मसात् कर ही कथानक का विन्यास किया। इस प्रकार यह रूपक शास्त्रीय अनुशासन और दार्शनिक विषयवस्तु का संतुलित समन्वय प्रस्तुत करता है।

रस-तत्त्व की दृष्टि से भी 'शारीपुत्रप्रकरण' उल्लेखनीय है। यद्यपि नाट्यशास्त्र में मूलतः आठ रसों का प्रतिपादन हुआ—**"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः"**[31] —परवर्ती आचार्यों ने शान्त रस को स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित किया। 'शारीपुत्रप्रकरण' में शारिपुत्र के वैराग्य, निर्वेद और मोक्षाभिलाषा के माध्यम से शान्त रस की प्रभावी अभिव्यक्ति होती है। बौद्ध सूत्र— *"ये धर्मा हेतुप्रभवा तेषां हेतुं तथागतः आह"*—नाटक में कारणवाद और अनित्यत्व की अनुभूति को जाग्रत करता है, जो अंततः निर्वेद (स्थायीभाव) में परिणत होता है। इस प्रकार विभाव (संसार-दुःख का बोध), अनुभाव (वैराग्यमय वचन और दीक्षा), तथा संचारीभाव (विचार, संशय, विस्मय) के संयोग से शान्त रस की निष्पत्ति होती है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'शारीपुत्रप्रकरण' न केवल नाट्यशास्त्रीय मानकों पर सफल है, अपितु शान्त रस की सशक्त प्रतिष्ठा के कारण संस्कृत नाट्यपरंपरा में एक विशिष्ट दार्शनिक आयाम का संवाहक भी है।

संदर्भ सूची

भरतमुनि — नाट्यशास्त्र।

अश्वघोष — शारीपुत्रप्रकरण।

कीथ, ए. बी. — History of Sanskrit Drama.

कपिलदेव द्विवेदी — संस्कृत साहित्य का इतिहास।

हजारीप्रसाद द्विवेदी — बौद्ध साहित्य की भूमिका।

रामकृष्ण पाण्डेय — संस्कृत नाट्यपरंपरा।

पादटिप्पणी

1 नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, नाट्योत्पत्ति

2 नाट्यशास्त्र, अध्याय 1

3 नाट्यशास्त्र, अध्याय 18

4 नाट्यशास्त्र, अध्याय 19

5 विनयपिटक, महावग्ग, १.२३.५

6 संयुत्तनिकाय 56.11, विनयपिटक, महावग्ग 1.6.20

7 नाट्यशास्त्र, अध्याय 6

8 संयुत्तनिकाय 35.43

9 नाट्यशास्त्र, अध्याय 24

10 नाट्यशास्त्र अध्याय 24, नायक-भेद-विचार

11 नाट्यशास्त्र, अध्याय 22

12 नाट्यशास्त्र, अध्याय 22

13 नाट्यशास्त्र, अध्याय 22

14 नाट्यशास्त्र, अध्याय 13, प्रवृत्ति-विचार, श्लोक 75–76

15 नाट्यशास्त्र, अध्याय 8

16 नाट्यशास्त्र, अध्याय 8, अभिनयाध्याय, श्लोक 9–10

17 नाट्यशास्त्र, अध्याय 17, वाचिकाभिनय, श्लोक 1–5

18 नाट्यशास्त्र, अध्याय 7

19 नाट्यशास्त्र 1.107–109

20 नाट्यशास्त्र, अध्याय 1

21 संयुत्तनिकाय, 35.43 तथा सब्बे संखारा अनिच्चा।" — धम्मपद, पद्य 277

22 नाट्यशास्त्र 1.107

23 नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, प्रथम अध्याय, नाट्यउत्पत्ति-वर्णन

24 विनयपिटक, महावग्ग 1.23.5

25 नाट्यशास्त्र 6.31

26 संयुत्तनिकाय, 35.43

27 नाट्यशास्त्र, अध्याय 1

28 नाट्यशास्त्र 1. नाट्योत्पत्ति-अध्याय, श्लोक 107-108

29 नाट्यशास्त्र, अध्याय 1, नाट्योत्पत्ति-अध्याय, श्लोक 107–108

30 नाट्यशास्त्र, अध्याय 18

31 नाट्यशास्त्र, अध्याय 6